जहाँ बच्चे ज्ञान निर्मित करते हैं

अमित भटनागर



शिक्षा के मुक्तिदाई होने के लिए यह जरूरी है कि सीखनेवाले उसमें सक्रिय भागीदार हों न कि उसके निष्क्रिय लक्ष्य, जैसा कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में होता है। *— पाउलो फ्रेयर*

काम करना सीखने से अविभाज्य रूप से जुड़ा रहता है। यदि हमारी शिक्षा व्यवस्था वाकई में सीखने (न कि सिर्फ उद्योगों के लिए कामगार शक्ति निर्मित करने) से कुछ सम्बन्ध होने का दिखावा करती है, तो उसे अपने पाठ्यक्रम में कार्य को समाहित करना होगा। यह उसकी अनिवार्य शर्त है।

यहाँ यह बहुत साफ समझ लेना चाहिए कि शिक्षा में काम का व्यावसायिक प्रशिक्षण से कोई लेना–देना नहीं है। वह तो केवल किसी कौशल को हासिल करना होता है जो व्यवसायों में लगे हुए अधिकांश लोग काम करते हुए सीखते हैं।

हम यहाँ कुपोषण के अध्ययन के एक उदाहरण को पाठकों के साथ साझा कर रहे हैं, जो केन्द्रीय विषय से फैलता हुआ जैव–विविधता, पोषण पर बाजार का प्रभाव आदि जैसे पहलुओं तक पहुँच गया। यह अध्ययन माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के द्वारा किया गया था और उसने नेशनल चिल्ड्रन साइंस काँग्रेस की राज्य स्तरीय स्पर्धा में प्रथम पुरस्कार जीता था।

एक समय हम दो कारणों से अपने स्कूल के साथ एक





चिकित्सक को जोड़ने के लिए बहुत व्यग्र थे। एक तो, आधारशिला लर्निंग सेंटर की हमारी धारणा ऐसी जगह की थी जहाँ हम अपने आसपास के गाँवों में हो रही गतिविधियों से जुड़ सकें। साथ ही जो गतिविधियाँ हमें आवश्यक लगती थीं या जिन्हें बच्चे करना चाहते थे उनमें शामिल हो सकें। दूसरे, हम अपनी शैक्षिक गतिविधियों को अन्य सम्बन्धित विषयों से भी जोड़ना चाहते थे। बच्चों में व्याप्त कुपोषण ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण विषय था।

हमारे स्कूल में आने वाले बच्चों के अनौपचारिक सर्वेक्षणों के बाद, हमें पता चला कि अनेक बच्चे प्रारम्भिक बचपन में कुपोषण से या लम्बी बीमारी से पीड़ित रहे थे। हम अपने अनुभव से यह भी जानते थे कि गर्भावस्था के दौरान माताओं को लगभग कभी भी अतिरिक्त खुराक नहीं मिलती थी। वास्तव में तो वे खुद भी ज्यादा नहीं खाना चाहती थीं क्योंकि उन्हें डर लगता था कि शरीर ज्यादा बड़ा हो जाने पर उन्हें प्रसव में दिक्कतें आएँगी। सरकारी आँकड़े हमें बताते हैं कि आधे से ज्यादा बच्चे कुपोषण से पीड़ित रहते हैं। हमें समझ में आया कि बच्चों और माताओं में कुपोषण का सीधा प्रभाव बच्चों की अकादमिक तथा अन्य क्षमताओं पर पड़ता है, इसलिए वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अन्ततः हमें एक आयुर्वेदिक चिकित्सक मिले जो वास्तव में कुछ दिलचस्प चीजें बनाना जानते थे, जैसे कि आयुर्वेदिक टूथ–पेस्ट, बाम आदि जो उन्होंने बच्चों को सिखाया। हमने आसपास के गाँवों में बच्चों के स्वास्थ्य की जाँच करने के लिए एक कार्यक्रम बनाया। कक्षा के कुछ सत्रों में बच्चों ने न केवल लम्बाई और वजन के आधार पर, बल्कि त्वचा, बालों, नाखूनों, आँखों, सूजन आदि को देखकर कुपोषण को पहचानना सीखा।



अब सवाल यह था कि इसके बारे में क्या किया जाए? दो सुझाव सामने आए : एक था कि कुछ पूरक आहार बनाकर कुपोषित बच्चों को दिया जाए। बहुत सम्भव है कि वह सत्तू (जो मध्यान्ह भोजन के एवज में स्कूलों में प्रदान किया जाता है) के उदाहरण से प्रभावित था।

दूसरा सुझाव था बच्चों को अस्पताल जाने के लिए प्रेरित किया जाए। उस समय एक योजना चल रही थी जिसमें अत्यधिक कुपोषित बच्चों को अस्पताल में भर्ती कर लिया जाता था और उसके परिचारक को न्यूनतम मजदूरी दी जाती थी।

पूरक आहार का लोगों ने स्वागत किया। कुछ परिवारों ने उसे खरीदा तो जरूर पर उन्हें वह महँगा भी लगा क्योंकि घर के सभी बच्चे उसे खाते थे। अस्पताल लगभग कोई भी नहीं गया।

उस चिकित्सक ने स्वयं पहल करते हुए सर्वेक्षण की खबर समाचार–पत्रों में दे दी। चूँकि कुपोषण से होने वाली मौतें बहुत गम्भीर मामला होती हैं, इसलिए प्रशासन ने उस खबर पर प्रतिक्रिया करते हुए पास के एक गाँव में एक स्वास्थ्य शिविर आयोजित करने के लिए जिला स्तर के चिकित्सकों का एक बड़ा दल भेजा।

अगले वर्ष एक विज्ञान परियोजना पर काम करने के दौरान, कुछ बच्चों को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कुपोषण इतना व्यापक था। उन्हें यह ख्याल था कि उनका इलाका आधुनिक खेती करने वाला क्षेत्र था। लोग उन्नत संकर बीज, रासायनिक खाद और कीटनाशकों का उपयोग करते थे। वे ट्रेक्टर की ट्रालियों को भरकर कपास और सोयाबीन बेचने के लिए ले जाते थे। बच्चों को ऐसा भी लगता था कि उस क्षेत्र में लोग संपन्न थे। गाँवों में अनेक मोटर साइकिलें, ट्यूबवैल, मोटर पम्प थे। बहुत से लोग किसी न किसी नौकरी में लगे थे। तो फिर ऐसी दिखाई देने वाली समृद्धि के बीच में कुपोषण कैसे हो रहा था?

अतः वे यह जाँच–पड़ताल करने के लिए निकले कि लोग क्या खा रहे थे। उनसे यह भी कहा गया कि वे गाँव के बुजुर्गों से भी बातचीत करें और यह पता लगाएँ कि जब वे बच्चे थे तो वे क्या खाते थे।

बच्चों ने बीस से भी अधिक बुजुर्ग पुरुषों और महिलाओं से बात की और सब बच्चों ने अपनी जानकारी साझा करते हुए खाने की 130 चीजों की सूची बनाई। उनमें कुछ तो अत्यन्त स्वादिष्ट खाद्य वस्तुएँ थीं – जिनमें विभिन्न प्रकार के मशरूम, पत्तियाँ, फूल, कन्द, पौधों के बीज और जंगल से प्राप्त होने वाले दुर्लभ फल, तीन या चार प्रकार का शहद और कई तरह की गोंद, अनोखे माँस और मछलियाँ, केंकड़े आदि शामिल थे। उनमें से लगभग 70 प्रतिशत चीजें जंगल या नदी से मिलती थीं। खेतों में उगाई जाने वाली खाने की फसलों में भी भरपूर विविधता थी। बच्चों ने 11 से भी ज्यादा प्रकार की ज्वार (सोरघम) के बीजों को तथा कम से कम 5 या 6 प्रकार के अन्य अनाजों के बीजों को इकट्ठा किया और उनकी सूची बनाई। और हाँ! हम दूध के उत्पादों को तो भूल ही गए। जिनके पास दुधारू जानवर थे उनके यहाँ भरपूर मात्रा में दूध, दही और घी रहता था। पर जिनके पास जानवर नहीं थे, उन्हें भी कम से कम मही (छाछ) मुफ्त में मिल जाता था।

बुनियादी रूप से हमने सीखा कि खेतों में पहले उपलब्ध जैव–विविधता के खो जाने से और जंगलों के पूरी तरह नष्ट हो जाने से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों के अभाव का बहुत गहरा सम्बन्ध था।

अब बच्चों ने जंगलों की क्षति और खेती की जैव–विविधता के लुप्त हो जाने के कारणों की जाँच–पड़ताल की।

एक बार फिर उनको पता चला कि किस तरह जंगलों का विनाश तब हुआ जब ठेकेदार अपने ट्रक लेकर आने लगे। लोग 25 पैसे प्रतिदिन की मजदूरी पर उनके लिए पेड़ काटने लगे। बच्चों ने 'ऐसे एक समय' के बारे में भी सुना जब लोगों को कभी भी बाजार जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वे केवल नमक खरीदने और मिट्टी का तेल (पहले वे अरंडी का तेल जलाते थे, जो वे खुद निकालते थे)लेने के लिए बाजार जाते थे। और यह बात वे बड़े गर्व से बताते थे। धीरे–धीरे लोगों को चीजें खरीदना सिखाया गया। उदाहरण के लिए बीड़ियों के द्वारा जो साप्ताहिक बाजार में पहले मुफ्त बाँटी जाती थीं। यूरिया के द्वारा जो स्थानीय व्यापारियों द्वारा खेतों में सचमुच में मुफ्त बिखेर दिया जाता था या काली चाय के द्वारा जो लोगों को मुफ्त पिलाई जाती थी।

इसके परिणामस्वरूप लोग बाजार और कर्ज की व्यवस्था पर इतने अधिक निर्भर हो गए हैं कि अब उन्हें मजबूर होकर नकद रकम प्राप्त करने के लिए खेती करना पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कई खाद्य फसलों को अधिक लाभकारी प्रतीत होने वाली नकद फसलों ने खेतों से बेदखल कर दिया है। जो सबसे अच्छी जमीन पहले मक्का और बाजरा के लिए सुरक्षित रखी जाती थीं, अब उन पर कपास और सोयाबीन का कब्जा हो गया है। खाद्यान्न की फसलों को कम गुणवत्ता वाली जमीनों पर स्थानान्तरित कर दिया गया। तिलहन की फसलें तो लगभग गायब–सी हो गई हैं। खेतों में अब फसलों की कोई विविधता नहीं दिखाई देती।

खोजबीन की इस पूरी प्रक्रिया ने बच्चों को नई अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान कीं और कुछ सीखी गई बातें उनके दिमागों में जम गईं। इस अध्ययन को नेशनल चिल्ड्रन्स साइंस काँग्रेस में भाग लेने के लिए चुना गया। नेशनल साइंस काँग्रेस के मुख्य अतिथि प्रोफेसर ए. पी. जे. कलाम थे। मंच से वे पर्यावरण और किसानों, दोनों के दृष्टिकोण से जैव–डीजल के फायदे समझा रहे थे। हमारे प्रोजेक्ट की जाँच करते समय, निर्णायक ने विद्यार्थियों से पूछा कि वे अपने नकद फसल–विरोधी दृष्टिकोण को कैसे उचित ठहराएँगे, जबकि प्रोफेसर कलाम ने उसके पहले ही कहा था कि "जैव–डीजल वाली फसल उगाना किसानों के लिए ज्यादा मुनाफा देने वाला है।" बिलकुल हिचकिचाए बिना और पलक झपकाए बिना एक भागीदार विद्यार्थी, सुरेश ने उत्तर दिया कि राष्ट्रपति को खेती के बारे में जानकारी नहीं है, यदि किसान जैव–डीजल के लिए फसलें उगाने लगें तो वे भूखों मर जाएँगे और खाने के लिए पूरी तरह से बाजार पर निर्भर हो जाएँगे! निर्णायकों ने कभी ऐसा सोचा भी न था कि वे प्रोफेसर कलाम जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के बारे में आलोचनात्मक दृष्टि से देख सकेंगे।

किसी चीज को जानने का आत्मविश्वास बहुत बड़ी बात होता है। हम और भी अधिक उत्साहित हुए जब हमें पता चला कि फूड एण्ड ऐग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन (विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन) तथा डा.वन्दना शिवा द्वारा किए गए अध्ययन भी खाद्य असुरक्षा को जैव–विविधता से जोड़ने वाले ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुँचे थे। किन्तु अभी भी कुपोषण से लड़ने वाला सरकारी कार्यक्रम केवल मध्यान्ह भोजन और पूरक आहार तक ही सीमित बना हुआ है।

फिर बच्चों द्वारा किए गए इस स्वास्थ्य/स्थानीय इतिहास के शोध से प्राप्त हुई जानकारियाँ एक छोटी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की गईं – जिसका शीर्षक था 'खिचड़ी–बिस्कुट की बहस के आगे'। क्योंकि उस समय कुछ संसद सदस्य संसद में मध्यान्ह भोजन योजना के अन्तर्गत पकाए हुए भोजन के बजाय एक फ्राँसीसी बिस्कुट दिए जाने के पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास कर रहे थे, क्योंकि उसमें सभी पोषक तत्व निहित होने का दावा किया गया था।

लेकिन बच्चों ने क्या सीखा?

बच्चों ने कुपोषण और उसके कारणों तथा स्थानीय इतिहास के बारे मे जो कुछ सीखा, उसके अलावा उन्हें कुछ सूक्ष्म ज्ञान और संदेश भी प्राप्त हुए। उन्हें मिली सीखों में से एक यह थी कि ज्ञान केवल किताबों और शिक्षित व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि 'निरक्षर' आदिवासियों के पास भी ज्ञान था। यह उनके, खास करके आदिवासी बच्चों के, आत्मविश्वास को बहुत बढ़ावा देने वाली बात है, क्योंकि सामान्य स्कूली शिक्षा में वे अन्ततः अपरिहार्य रूप से अपने समाज और संस्कृति के बारे में एक हीन–भावना की ग्रंथि के शिकार हो जाते हैं।

उसके अलावा, उन्होंने जानकारियों और आँकड़ों की तालिकाएँ बनाना तथा उनसे निष्कर्ष निकालना सीखा। इसमें उन्हें बहुत–सा बुनियादी गणित भी करना पड़ा – प्रतिशत निकालना, औसत निकालना, जोड़ना, भाग देना आदि। साथ ही, निश्चित रूप से, उन्हें दूसरों की बातें ध्यान से सुनने, लिखने, अपने लिखे हुए को सम्पादित करने का भी बहुत अभ्यास हुआ। स्थानीय भाषा में कही गई बातों का हिन्दी में अनुवाद करना भी एक बड़ा काम था। अपनी जानकारियों को प्रस्तुत करने के कौशल

(मुख्य रूप से चार्ट बनाना, रिपोर्टों को लिखना और चार्टों को श्रोताओं को समझाना) भी विकसित हुए।

हो सकता है कि आप सोच रहे हों कि बच्चों के इस काम के वर्णन का 'काम और शिक्षा' के मुद्दे से क्या सम्बन्ध है। लेकिन ऐसा लगता है कि यही काम और शिक्षा है! हमने यह सीखा कि बच्चों द्वारा किया गया ऐसा कार्य काम और शिक्षा के अन्तर्गत ही आता है। यह उसी की मिसाल है, खासतौर पर जब हमें यह बताया गया कि हमारे विद्यार्थियों द्वारा अकाल के विषय पर किए गए एक प्रोजेक्ट का उल्लेख एन.सी.एफ. समूह के द्वारा निकाले गए 'वर्क एण्ड एजुकेशन पेपर (काम तथा शिक्षा, शोधपत्र)' में किया गया।

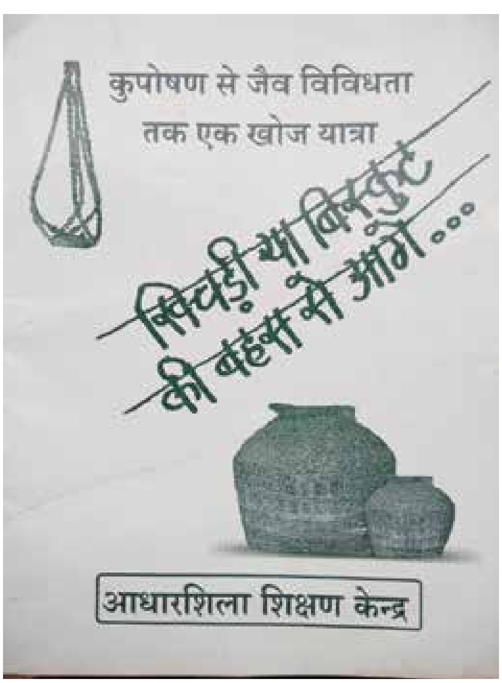
इसलिए अब जब हमसे काम और शिक्षा के बारे में पूछा जाता है तो हमने ऐसे प्रोजेक्टों का विवरण देना सीख लिया है!!

निष्कर्ष

बहुत–सा सीखना तब घटित होता है जब बच्चे मुक्त गतिशील तरीके से चीजों या मुद्दों की खोजबीन करते हैं, और सामान्य जीवन के प्रवाह में भी सीखना घटित होने का यही तरीका है। समय बीतने के साथ बहुत थोड़ी बातें समझ के रूप में बची रह जाती हैं, अधिकांश तो दिमाग की पिछली गलियों में छिप जाती हैं। सीखने की इस नैसर्गिक व्यवस्था में हमसे कभी भी यह मापने के लिए नहीं कहा जाता कि हमने क्या और कितना सीखा। लेकिन स्कूलों के पाठ्यक्रमों के साथ यही समस्या है कि वे हमेशा सीखने के परिणामों का मात्रात्मक आकलन करना और उसके आधार पर बच्चों के बारे में निर्णय लेना चाहते हैं। इसीलिए मुझे भी यह लिखना जरूरी था कि उन्होंने गणित, हिन्दी, तालिकाएँ बनाना आदि सीखा।

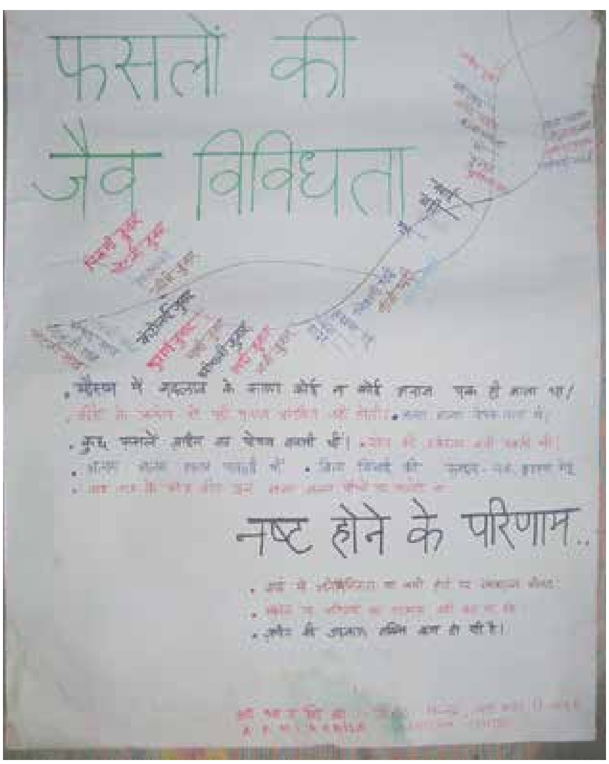
यह निःसन्दिग्ध रूप से सीखने का एक बहुत अच्छा और मन लगने वाला तरीका है, लेकिन दुख की बात है कि हमारे अधिकांश स्कूलों का ढाँचा इसे अपनाने और क्रियान्वित करने के लिए नहीं बना है, जिसका प्रमुख कारण हमारी परीक्षा–आधारित मूल्यांकन व्यवस्था है। एक अन्य बाधा समय को देखने का हमारा दृष्टिकोण है। हम निरन्तर बच्चों के समय 'बर्बाद करने' के बारे में चिन्तित रहते हैं और इसलिए उनको किसी न किसी निरर्थक गतिविधि में लगाए रखने का प्रयास करते रहते हैं। इसके साथ ही, हमें एक सूची में दिए गए सभी विषय–प्रसंगों (टॉपिक्स) को एक निर्धारित समय–सीमा में समाप्त करना होता है। सीखने की बात गौण होती है।

यदि हम सचमुच में सीखने के एक तरीके के रूप में काम को शामिल करना चाहते हैं, तो उसके लिए शिक्षा व्यवस्था और स्कूल के ढाँचे तथा शिक्षकों की सोच में मूलभूत परिवर्तन करने की जरूरत होगी। ऐसा किया जा सकता है, यह आधारशिला लर्निंग सेण्टर तथा कई अन्य नवाचारी सीखने के केन्द्रों ने करके दिखाया है।











अमित भटनागर एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो बाद में शिक्षाविद बन गए। उन्होंने मध्य प्रदेश के आदिवासियों के बीच काम करने के लिए स्थापत्य कला की अपनी पढ़ाई छोड़ दी। वहाँ वे अन्य साथियों के साथ एक जन–संगठन खड़ा करने में सफल हुए। सांस्कृतिक कार्यों में रुचि होने के कारण, उन्होंने सामाजिक विषयों पर आधारित कई गीत और नाटक लिखे हैं। शिक्षा तंत्र की सीमाओं और बन्दिशों से परेशान और हताश होने के बाद उनकी पत्नी और उन्होंने बड़वानी जिले में आदिवासी मुक्ति संगठन के साथ आधारशिला लर्निंग सेण्टर प्रारम्भ किया। उनसे adharshila.learningcentre@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।